तलाक (Divorce)

हिन्दू कानून का इतिहास लगभग तीन हजार वर्ष पहले से शुरू होता है। इसका मूल स्रोत वेदों को माना जाता है। जो आर्य भारत में बसे थे, उन्होंने पारिवारिक मुद्दों के अपने ही नियम बनाए। कई सदियों तक होने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों तथा सामाजिक सुधारों के कारण पारिवारिक कानूनों में कई परिवर्तन हुए। स्वतंत्रता के बाद हिन्दू कानून के कई क्षेत्रों में अनेक संहिताकरण तथा सुधार हुए। विवाह तथा सम्बन्ध-विच्छेद ऐसा क्षेत्र है, जिसे हिन्दू मैरिज एक्ट 1955 में संहिताबद्ध किया गया। हिन्दुओं में विवाह की रीतियां तथा विवाह की मान्यता हिन्दू मैरिज एक्ट से शासित है। यह कानून जो विवाह को एक अनुबंध मानता है, वह इस वैदिक धारणा को स्त्री तथा पुरुष के बीच अटूट बंधन को भी स्वीकार करता है। प्राचीन हिन्दू एक्ट में तलाक की संकल्पना स्वीकार्य नहीं थी। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 ने इसे एक महत्वपूर्ण कानून के रूप में नवीकरण किया,

विवाह एक धार्मिक संस्कार है, जिसमें स्त्री-पुरुष के बीच जन्म जन्मान्तर का संबंध होता है। इसमें मन और आत्मा का भी निकटतम संबंध हो जाता है। परन्तु जब व्यक्तिगत जीवन में आनन्द की कमी हो जाती है, व्यक्तिगत जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति में अवरोध आने लगता है तो ऐसी स्थिति में विवाह की सार्थकता नष्ट होने लगती है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर तलाक का सहारा लिया जा सकता है। पति-पत्नी के बीच वैवाहिक संबंध को तोड़ देने या विच्छेद को ही तलाक (Divorce) कहा जाता है। सामाजिक नियमों एवं न्याय के दृष्टिकोण से तलाक को न्यायसंगत माना गया है। पति-पत्नी के बीच बढ़ते झगड़े या एक दूसरे के बीच तनाव में सुधार के लिए तथा जीवन को नये सिरे से खुशहाल बनाने के लिए तलाक एक आवश्यक कानून है। हिन्दू मैरिज एक्ट के तहत पति-पत्नी अदालत के द्वारा दूसरे पक्ष के नीचे दिए गए व्यवहार या परिस्थितियों के आधार पर तलाक लिया जा सकता है —

1. कम से कम दो वर्षों तक परित्याग करना
2. पति-पत्नी का धर्म परिवर्तन कर लेना
3. असाध्य पागलपन
4. लाइलाज व उग्र बीमारी, कोढ़ आदि।
4. यौन रोग जो दूसरों को भी हो सकता है (यह रोग याचिका दायर करने वाले के पक्ष से न हुआ हो।
5. संसार त्याग कर संन्यासी हो जाना।
6. सात वर्षों तक यदि एक पक्ष का कोई समाचार न मिला हो।

7 विवाह के बाद पति बलात्कार या अस्वाभाविक सेक्स का अपराधी हो।

8. वह लड़की जिसका विवाह 15 वर्ष से कम आयु में हो गया हो। वह 18 वर्ष पूरा करने से पहले तलाक ले सकती है। इसके अतिरिक्त प्रथागत तलाक भी हो सकता है। (धारा : 13)

9. परगमन अर्थात दो व्यक्तियों में स्वैच्छिक यौन संबंध जो आपस में विवाहित नहीं है।

10. क्रूर व्यवहार अर्थात पति या पत्नी किसी एक का व्यवहार इस तरह का है कि दूसरा व्यक्ति उसके साथ नहीं रह सकता, क्रूरता व्यवहार है।

11. न्यायसम्मत विच्छेद के कम से कम एक वर्ष तक पुनः सहवास न हुआ हो। न्यायसम्मत विच्छेद में पति या पत्नी तुरन्त विवाह को रद्द नहीं करना चाहते दूसरे पक्ष को समय देने को इच्छुक रहते हैं। ऐसी स्थिति में वे तलाक के बदले अदालत से न्यायसंगत विच्छेद की आज्ञा ले सकते हैं।

12. अदालत द्वारा पत्नी के भरण-पोषण का खर्च देने का आदेश पूरा न करना।

13. वैवाहिक अधिकारों के पुनः स्थापन की डिक्री होने पर भी उस डिक्री पर अमल न किया गया हो।

14. परस्पर सहमति। 1976 से हिन्दू दम्पति परस्पर सहमति से अदालत द्वारा तलाक ले सकते हैं। दोनों पक्षों को संयुक्त रूप से न्यायालय में याचिका देना आवश्यक है। तलाक जल्द नहीं मिलता। इसमें अदालत 6 से 18 महीने तक का इंतजार करती है। फिर दोनों पक्षों को दुबारा तलाक के लिए याचिका देना पड़ता है। अर्थात उन्हें तलाक के निश्चय को प्रकट करना पड़ता है। इस प्रक्रिया के दौरान यदि कोई पक्ष अपनी सहमति वापस ले लेगा तो तलाक नहीं हो पायेगा।

तलाक होना चाहिए या नहीं, यह एक विवादास्पद प्रश्न प्रारम्भ से ही रहा है। परन्तु न्याय के दृष्टिकोण से उपरोक्त स्थितियों में से यदि कोई भी किसी स्त्री-पुरुष (वैवाहिक) में हो, तो न्यायालय के द्वारा तलाक मान्य है। फिर भी इस संबंध में मुख्य रूप से तीन दृष्टिकोण हैं जो निम्नलिखित है —

(i) परम्परावादी मत – समाजशास्त्र के कुछ विद्वानों ने विवाह को एक आध्यात्मिक समझौता माना है। विवाह सिर्फ शारीरिक संबंध ही नहीं बल्कि दो आत्माओं के बीच पवित्र भावनात्मक संबंध है। इसे दो आत्माओं का मिलन कहना ज्यादा श्रेयस्कर होगा। इसमत के अनुसार वैवाहिक संबंध विच्छेद को प्रश्रय नहीं देना चाहिए अर्थात तलाक मान्य नहीं है। एक बार वैवाहिक संबंध हो जाने पर स्त्री और पुरुष अग्नि के समक्ष यह प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि हम दोनों आजीवन एक दूसरे से अलग नहीं होंगे। स्थायी तौर पर एक पत्नी परिवार के लिए यह आवश्यक है कि वह तलाक के संबंध में कुछ नहीं सोचे। इसलिए इस मत को कठोरतावादी मत कहा जाता है।

(ii) सामाजिक समझौता अर्थात मौलिक मत – इस मत के अनुसार विवाह एक समझौता या बंधन है। जबतक यह समझौता पुरुष और स्त्री के बीच उचित ढंग से निर्वहन हो रहा हो, दोनों एक दूसरे के दायित्व को ठीक से पूरा कर रहे हों, तब तक यह वैवाहिक संबंध ठीक से चलता रहता है। यदि पति-पत्नी दोनों के बीच मनमुटाव बढ़ता जाय, एक दूसरे से नाराज या असंतुष्ट हों तो ऐसी स्थिति में सामाजिक और न्यायिक रूप से तलाक को युक्तिसंगत माना गया है।

(iii) उदारवादी मत – उदारवादी मत में परम्परावादी और सामाजिक समझौतावादी मत से कुछ अलग हटकर सोचने का प्रयास किया है। इस मत के अनुसार वैवाहिक संबंध एवं चारित्रिक गुणों पर आधारित है। इसलिए संबंध सनातन धर्म को स्थायी और सुदृढ़ बनाने वाली सभी नियमों को मान्यता देनी चाहिए। यह मत तलाक की उपयोगिता को पूरी तरह से नकारता भी नहीं है। इस मत का कहना है कि तलाक देने में जल्दी नहीं करना चाहिए। दोनों पक्ष को गंभीर रूप से विचार करना चाहिए। पति-पत्नी के बीच प्रेम भाव बढ़ना चाहिए तथा एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रखना चाहिए। इसके बावजूद भी यदि दाम्पत्य जीवन में दुःख, असंतोष एवं भार स्वरूप हो तो दोनों मिलकर आपसी सहमति से तलाक लिया जा सकता है। अतः यह मत दोनों का समन्वय है

तलाक के बाद कुछ पति-पत्नी का जीवन सुखमय देखा गया है; परन्तु कुछ में दोनों का जीवन भारपूर्ण देखा गया है। धार्मिक अनुष्ठान द्वारा जो विवाह होता है उसमें स्थायित्व रहता है और तलाक बहुत कम देखा गया है। जहाँ पर माता-पिता अपने लड़के एवं लड़कियों को जीवन साथी चयन करने की स्वतंत्रता नहीं देते बल्कि माता-पिता उनके लिए स्वयं ही चयन कर संबंध स्थापित करने की आज्ञा दे देते हैं, वहाँ तलाक कम देखा गया है। परन्तु जहाँ पर प्रेम विवाह एवं स्वेच्छा से स्त्री-पुरुष वैवाहिक संबंध में बंध जाते हैं, वहाँ पर अधिकांशतः विवाह असफल होता है। ऐसा विवाह शारीरिक आकर्षण एवं यौन तृप्ति के निमित्त होता है। जैसे-जैसे शारीरिक आकर्षण कम होता गया, यौन-तृप्ति कम होती गयी, वैसे-वैसे वैवाहिक संबंध में प्रेम, सहानुभूति आदि में कमी होने के कारण कटुता एवं द्वेष होना शुरू हो जाता है। निष्कर्षतः तलाक का सहारा लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है, तलाक द्वारा मनुष्यों को जो भावनात्मक वेदना एवं संवेगात्मक धक्का सहना पड़ता है, वह बहुत ही कष्टदायी होता है।

डॉ० राम नारायण शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र विभाग
डी० एस० एम० कॉलेज,
[illegible]